आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-७ * अंक-४ * दिसम्बर, २०१२

चार शरणमें आत्मा ही शरणरूप है । चिद् चैतन्यचन्द्रमें सत्स्वरूप है, शाश्वत है, वह किसकी रचना करता है ? वह ज्ञानकी सृष्टिको करता है और रचना भी करता है। ज्ञानसृष्टिकी रचना करते करते केवलज्ञान हो जाता है।

-पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

✻ अर्थका भावभासनके बिना वचनका अभिप्राय पहिचाना नहीं जाता। वह स्वयं तो मान लेता है कि मैं तो जिनवाणीके अनुसार मानता हूँ। लेकिन भावभासनके बिना अन्यथापना हो जाता है। लौकिकमें भी नौकरको किसी कार्यके लिए भेजते हैं तो वह नौकर यदि कार्यके भावको बराबर समझता है तो सही कार्य करेगा, किन्तु यदि नौकरको उस कार्यका भाव न भासे तो कहीं न कहीं गलती कर बैठता है। इसलिए भावभासन हेतु हेय-उपादेय तत्त्वकी परीक्षा अवश्य करनी। १३०३. *(श्री टोडरमलजी, मोक्षमार्गप्रकाशक, अधिकार ५)*

✻ जिसने अशरीरी होनेका संधान किया वही सच्चा धनुर्धारी है और अपने चित्तको एकाग्र करके जिसने शिवतत्त्वको साधा वहीं वास्तवमें निश्चिंत है। १३०४

(मुनिवर रामसिंह, पाहुडदोहा, गाथा-१२१)

✻ यह शरीर ही मेरी आत्मा है, इसप्रकार जानना वह शरीरकी सन्तान है अर्थात् शरीरप्राप्तिका परंपराकारण है और अपने आत्मामें ही आत्मापना होनेका ज्ञान होना ही इस शरीरके अभाव होनेका कारण है। १३०५.

(श्री शुभचंद्राचार्य, ज्ञानार्णव, सर्ग-३२, श्लोक-६०)

✻ यदि तृष्णारूपी रोग, भोगोंको भोगनेरूप औषधिके सेवनसे मिट जाता है तो भोगोंकी चाहत, मिलना और भोगना यथार्थ है। यदि भोगोंके कारण तृष्णारोग और अधिक बढ़ जाता है तो भोगोंका औषध तो मिथ्या है। यह समझकर उपरोक्त औषधका राग (इच्छा) छोड़ देनी चाहिए और एक शांतरसमय निजआत्माका ध्यान है उसीसे स्वाधीन आनंद मिलता जाता है और उतनी ही विषयभोगकी वांछा मिटती जाती है। इसलिए इन्द्रिय सुखकी आशा छोड़कर अतीन्द्रियसुखकी प्राप्तिका उपाय करना चाहिए। १३०६.

(श्री अमितगति आचार्य, तत्त्वभावना, श्लोक-९१का भावार्थ)

✻ अपने पर जब कोई आपत्ति आती है तब मनुष्य जिस प्रकार दुःखी होता है उसी प्रकार अन्य पर आई हुई आपत्तिको अपनी ही समझकर दुःखका अनुभव करना यही वास्तविक दयालुता है। १३०७. *(श्री वादिभसिंह आचार्यसूरि, क्षत्रचूडामणि, सर्ग-४, श्लोक-९)*

✻ कामसेवन नहीं करना ही कामकी शांतिका उपाय कहा गया है। क्योंकि कामसेवनसे कामभावकी वृद्धि होती रहती है, परंतु कभी भी उसकी शांति नहीं होती। १३०८.

(श्री कुलधर आचार्य, सारसमुच्चय, श्लोक-११४)

❋

वर्ष-7
अंक-4

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

संवत
2069
December
A.D. 2012

देव-गुरु-शास्त्रसे प्रेम करो
कुटुंबी-जन आदिसे नाता (प्रेम) तोड़ो

(श्री परमात्मप्रकाश शास्त्र ऊपर हुए परम पूज्य गुरुदेवश्रीके अलौकिक प्रवचन)

(प्रवचन नं. १६३)

यह परमात्मप्रकाश शास्त्र है। उसका दूसरा अध्याय है। उसकी १३४वीं गाथामें श्रीगुरु शिष्यको ऐसी शिक्षा दे रहे हैं कि हे शिष्य तूं जिनेश्वरदेवके चरणारविंदकी परम भक्ति कर ! वीतराग सर्वज्ञ परमदेवने परम सत्यमार्ग समझाया है इसलिए तुम उसकी भक्ति करो !

अरि जिय जिण-पइ भत्ति करि सुहि सज्जणु अवहेरि।
तिं बप्पेण वि कज्जु णवि जो पाडइ संसारि॥१३४॥

अर्थ : हे भव्य जीव ! तूं जिनपदकी भक्ति कर ! त्रिलोकीनाथ परमात्मा वीतराग सत्स्वरूप है। इसलिए तूं जिनपदकी प्रीति कर; और जिनेश्वरदेवके कहे हुए जिनधर्ममें प्रीति कर ! गुणानुराग कर ! और संसारसुखके निमित्तकारणरूप ऐसे कुटुंबीजन चाहे तुझे प्रियसे प्रिय हो तो भी उनकी प्रीतिको छोड़ ! क्योंकि वे तुझे दुर्गतिमें निमित्त हैं।

संसारसुखका मतलब होता है 'दुःख। इस संसारसुखमें जो तुझे निमित्तरूप होते हैं ऐसे कुटुंबीजन और कुदेव, कुगुरु जिनकी तुझे इतनी महिमा और प्रीति है उन्हें भी तुझे छोड़ना ऐसा पहले कहते हैं क्योंकि ये सब संसार सुखके निमित्त हैं किन्तु आत्मिकसुखमें निमित्त नहीं है। संसारसुख अर्थात् दुःखके निमित्त है। अत्यंत प्रिय माता-पिता हो अथवा स्त्री हो वह भी दुःखमें ही निमित्त है। धर्मके विरोधी है। एक त्रिलोकीनाथ परमेश्वरके वचन ही तुझे सुखके कारण है इसलिए उसमें प्रीति (प्रेम) कर !

विशेषमें कहते हैं कि अत्यंत स्नेहरूप पिताजीसे भी तेरी आत्माका कुछ भी हित

नहीं है। यह तो तुझे संसार-समुद्रमें पटक देनेवाले मोहके निमित्त है। इसलिए जिन्हें तुझ पर बहुत स्नेह है ऐसे तेरे पिताजीसे भी तुझे कोई प्रयोजन नहीं है। वे तो तुझे चतुर्गतिमें भ्रमणके निमित्त है। इसीलिए भगवानकी दिव्यध्वनिमें ऐसा आया है कि हे आत्मन् ! वीतराग भगवानका कहा हुआ धर्म और वीतराग भगवानके वचनोंमें तू गुणानुराग कर। प्रेम कर ! यही तुझे मोक्षके साधन होंगे। प्रियसे प्रिय स्वजन और सबसे प्रिय पिता भी तुझे मुक्तिके लिए साधनरूप नहीं होगे इसलिए उनकी प्रीतिको तू छोड़ दे।

पिताका नाम अधिक क्यों लिया ! बच्चोंके लिए वह खूब कमा कमाकर छोड़ जाते हैं न ! किन्तु वह तुझे सुगति नहीं देंगे। दुर्गति ही देंगे। सर्वज्ञ भगवान ही इस जीवके धर्मपिता हैं। भगवान ही जीवके लिए मुक्तिके कारण हैं। इसलिए भगवानकी प्रीति करने योग्य है। तुझे तेरी आत्माका हित करना हो, संसारको नीचा करके तुझे उपर आना हो तो परमपिता ऐसे श्री सर्वज्ञदेव और उनके वचनोंकी प्रीति कर !

भावार्थ :–हे आत्माराम ! अनादिकालसे दुर्लभ वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा बताया हुआ जो राग-द्वेष-मोह रहित परिणाम लक्षणवाला शुद्धोपयोग ही धर्म है, वही तुझे संसारसे मुक्त करायेगा। अतः उसीकी प्रीति कर ! परिणाम लक्षण अर्थात् पुण्य-पापसे रहित पवित्र परिणाम कि जिसमें मिथ्याभ्रांतिका अभाव होता है और आनंदमूर्ति आत्माकी रुचि-ज्ञान और रमणताके शुद्धपरिणाम है वही जीवोंके सच्चे परिणाम है क्योंकि जीव शुद्ध स्वरूप है। पवित्र है, आनंदकंद है, निर्मलानंद है। आत्माके अंतर्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके परिणाम होते हैं उन्हें जीवके परिणाम कहे हैं। देखो ! इसमें स्वजन तो दूर रह गये, माता-पिता भी दूर रह गये, देव-गुरु-शास्त्र भी दूर रह गये, शुभ परिणामको बादमें व्यवहारधर्म कहेंगे परन्तु तेरे निर्मल परिणाम ही निश्चयधर्म है। पुण्य-पापके परिणाम जीवका सच्चा स्वरूप नहीं है। पुण्य-पापका फल भी यह जीवका स्वरूप नहीं है।

जीवका स्वरूप तो उनसे भिन्न शुद्ध चिदानंदघनस्वरूप है। उसके आश्रयसे जो शुद्धोपयोगरूप परिणाम होते हैं वे ही जीवके सच्चे परिणाम हैं। इसलिए उन्हींकी प्रीति करो ! निश्चयकी प्रथम बात तो यही है। बादमें व्यवहारकी बात कहेंगे क्योंकि प्रथम निश्चय होता है तो साथमें व्यवहार होता है।

भाई ! तुम आत्मा है प्रभु ! तेरे स्वजन–सत्–जन कौन हैं ? कि तेरे शुद्ध स्वभावके आश्रयसे प्रकट हुए परिणाम ही तेरे स्वजन है। बाहरके स्वजन तो सभी दुःखके निमित्त

है। वे तो सब तुझे संसारके कुएमें डालेंगे। तेरी किसी लड़कीके साथ शादी करायेंगे किन्तु ऐसा नहीं कहेंगे। हे भाई ! अनंतकालमें बड़ी मुश्किलसे यह भव मिला है तो प्रथम करने जैसा है तो वह आत्महित ही है। वीतरागी शुद्ध परिणाम लक्षणवाला शुद्धोपयोग प्रकट करना ही आत्महितैषी जीवका प्रथम कर्तव्य है। दया-दान-व्रतादिके परिणाम होंगे जरूर किन्तु वे आस्रव हैं।

पैसे की रुचिमें इस जीवको यह बात समझना थोड़ी कठिन लगती है। वीतरागी संत-आचार्य ऐसा कहते हैं कि हे आत्मा! तेरे परिणाममें शुद्धोपयोग होना वही तेरे परिणाम है। इन वीतरागी परिणामोंसे ही तेरा हित होगा। उसीसे तेरी मुक्ति होगी।

दया-दान-व्रतादिके परिणाम तो शुभ उपयोग है और हिंसा, झूठ, चोरी आदिके परिणाम तो अशुभ उपयोग है इसलिए उन्हें आत्माके परिणाम नहीं कहे। सात तत्त्वमें जीव, अजीव, आस्रव आदिमें जो आस्रव है वह जीव तत्त्वसे भिन्न तत्त्व है। उन्हें जीवका नहीं कहा किन्तु संवर-निर्जराके जो शुद्ध परिणाम होते हैं उन्हें जीवके परिणाम कहे हैं क्योंकि वे वीतराग विज्ञानघन स्वभावमेंसे निकले हुए वीतरागी परिणाम है।

तीन लोकके नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर कि जो सौ इन्द्रोंसे पूज्य होते हैं ऐसे त्रिलोकीनाथने यह कहा है कि राग-द्वेष-मोह रहित शुद्धोपयोग वह जीवके परिणाम है। अहो ! समवसरणमें भगवानकी दिव्यध्वनिमें ऐसा आया है कि पुण्य-पाप रहित और मिथ्यात्व रहित भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध है-अकेली शुद्धताकी खदान है। उसीके आश्रयसे हुए मोह-राग-द्वेषसे रहित शुद्ध परिणाम ही आत्माके सच्चे परिणाम है, यह ही शुद्ध उपयोग है, यह ही निश्चयधर्म है। इसलिए उसमें 'रति कुरु' अर्थात् उसीमें प्रेम कर !

इस शरीररूपी मिट्टीसे भिन्न जड़कर्मोंसे भिन्न और आस्रवके परिणामोंसे भिन्न ऐसा आत्मा वह जीवतत्त्व है और उसीके अंतर्मुख उपयोगको जिसे जीवपरिणाम लक्षण शुद्धोपयोग कहा है उसमें तुम प्रेम करो।

जीवके परिणाममें तुझे प्रेम हुआ तो तुझे जीवतत्त्वसे प्रेम हुआ समझ। आस्रवोंसे विमुख और जीवस्वभावके सन्मुख परिणाम वह जीवके परिणाम है। उसीको शुद्धोपयोग कहो या वीतरागी परिणाम कहो एक ही बात है। क्योंकि उन्हें ही राग-द्वेष-मोहसे रहित कहा गया है। मोह और क्षोभसे रहित जीवपरिणाम है वही सच्चा धर्म है। वीतरागी भगवानकी दिव्यध्वनिमें धर्मका स्वरूप बताया है। उसीमें रुचि कर ! प्रेम कर ! दृष्टि कर !

अब इस निश्चयधर्मकी पूर्णता जब तक नहीं होती है तब तक बीचमें व्यवहारधर्म आये बिना नहीं रहता। इसलिए उस व्यवहारधर्मकी प्रीति करना। ऐसा कहा है। इस व्यवहारधर्मका लक्षण षट्आवश्यकरूप कहा और उसे शुभउपयोगस्वरूप कहा है। निश्चय-धर्मका लक्षण जीव परिणाम कहा और उन्हें शुद्धोपयोगरूप परिणाम भी कहे थे।

जैसे सिद्ध भगवान हो गये, अरिहंत भगवान हो गये, ऐसा ही जीवका स्वभाव है। इसी स्वभावके आश्रयसे जो शुद्ध परिणाम होता है वह ही जीवका धर्म है। उसीके साथ व्यवहार-धर्म भी मुनिदशामें होता है। उसका लक्षण षट् आवश्यक आदि है। वे शुभ भावरूप है।

मुनिको सामायिक आदि षट्आवश्यकोंके परिणाम होते हैं वे शुभभावरूप है। उन्हें ही व्यवहारसे धर्म कहते है परन्तु निश्चयसे वे शुभआस्रव है। श्रावकको दान, पूजा आदिरूप शुभभाव है, वह ही व्यवहारधर्म है। निश्चयधर्म तो मुनि और श्रावक सभीको शुद्ध उपयोगरूप ही होता है। वह ही सच्चा धर्म है। वीतरागी मार्गमें यह एक ही सच्चा निश्चयधर्म है और वीतरागभावके अलावा अन्यत्र तो कहीं भी धर्म है ही नहीं।

श्रोता :—व्यवहारधर्मसे भी प्रेम करनेको कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—हाँ, निश्चयधर्मका प्रेम निश्चयसे और व्यवहारधर्मका प्रेम व्यवहारसे होता है। व्यवहारधर्मका प्रेम व्यवहारमें होता है। श्रावकको पूजा, दान, दया, स्वाध्याय आदि छ प्रकारका व्यवहारधर्म होता है और मुनिराजको भी षट् आवश्यकरूप शुभ परिणामरूप व्यवहारधर्म होता है। उन दोनोंमें-मुनि और श्रावकधर्मकी प्रीति करो ! और निश्चय तथा व्यवहाररूप दोनों धर्मोंकी प्रीति करो! ऐसे धर्मसे विमुख कोई भी हो तो उसकी प्रीति छोड़ दो। फिर वह चाहे धर्मपत्नी हो या फिर पिता हो किंतु उनकी भी प्रीतिको छोड़ो।

क्या भगवान आपसमें लड़ाते होंगे। ना, भगवान तो तुझे तेरे हितकी दिशा बतलाते हैं। भाई ! धर्मके अलावा तुझे कोई शरणरूप नहीं है। धर्मात्मा जीवोंसे प्रेम करो। वह तुम्हें धर्म क्या है वह समझायेंगे। अन्य तो सब ही तुझे संसारमें ले जानेकी बात करेंगे । मृत्युके समय भी स्वार्थकी बात कहेंगे। कोई भी तेरे प्रिय स्वजन नहीं है क्योंकि सभीका क्षेत्र ही भिन्न है इसलिए किसीके साथ तेरा मेल मिलाप नहीं है।

निश्चयदृष्टिसे रहित और निश्चयसहित व्यवहारधर्मके बिना धर्मसे विमुख अपने कुलके मनुष्यको भी छोड़ दे। तुझे तेरी आत्माका रक्षण करना है न। तो फिर यह स्वजन सब मेरे प्रियजन है ऐसी मान्यताको छोड़। अहो ! कुंदकुंदाचार्यदेवने तो मूलाचारमें यहाँ तक

कहा है कि हे साधु! जिस साधुसंघमें विरुद्ध श्रद्धानका पोषण होता हो तो अकेले रहना और अकेले न रहा जाय तो शादी कर लेना किन्तु वहाँ नहीं जाना। तुझे चारित्रसंबंधी दोष तो होगा किन्तु विरुद्ध श्रद्धानके साथमें यदि तेरी श्रद्धा ही झूठी हो जायगी तो तू चार गतिमें भ्रमण करेगा। श्रद्धानका दोष बड़ा है।

''सुहि सज्जणु अवहेहि''.....अर्थात् हे प्रिय स्वजनो, दुश्मन नहीं। स्त्री, बच्चे ऐसा कहे पिताजी ! आपके बिना हमारा नहीं चलेगा हम तो मर जायेंगे। आप दूर रहते हो तो भी हमें अच्छा नहीं लगता, ऐसे ऐसे मीठे जहरीले शब्दबाणोंसे मोही स्वजनोंको मार ड़ालते हैं। उन्हें तो ऐसा लगता है कि मेरा कुछ भी हो किन्तु मैं तो तुम्हारा भला ही करूँगा। अरे ! अनंतकालमें मुश्किलसे यह मनुष्यभव मिला है, उससे भी महादुर्लभ वीतरागी भक्तोंका निमित्त मिला है तो अब उनसे विरुद्ध कहनेवाले कोई स्वजन हो तो उनके प्रेमको भी छोड़ो। अकेले रहना, कुंवारा रहना, परन्तु कुलके मनुष्यका प्रेम नहीं रखना और धर्म सन्मुख परिणामवाले निश्चय और व्यवहारधर्मके धारक यदि परकुलके मनुष्य हो तो भी उनसे प्रीति करना।

वीतरागीमार्गमें तो ऐसी ही बातें आयेगी वहाँ अन्य कौनसी आशा रखोगे ! पद्मनंदी पंचविंशतिकामें पद्मनंदी आचार्यदेवने अंतिम अधिकारमें ब्रह्मचर्यकी बहुत महिमा की और बादमें कहा कि हे युवान पुरुषों ! यह ब्रह्मचर्यका अधिकार आप लोगोंको पसंद नहीं आये तो मुझे क्षमा करना। मैं एक मुनि हूँ, मुझसे आप अन्य क्या आशा रखोगे ? अहाहा ! हम तो मुनि हैं हमारे पास वीतरागी परिणाम और धर्मके अलावा अन्य क्या आशा रखोगे ? हे युवको ! ब्रह्मचर्यकी बात आपको ठीक न लगे तो मुझे क्षमा करना।

यह भगवानके कोर्टका कायदा है। वह आपको बता देते हैं। इस पद्मनंदी पंचविंशतिकामें २६ अधिकार हैं। वनवासी दिगम्बर संत जिन्हें एक लंगोटी भी नहीं होती। आहार-जल आदिकी भी जिन्हें परवाह नहीं थी, यदि दो-चार-आठ दिनमें शुद्ध आहार मिलता है तो लेते है इस प्रकार पद्मनंदीनाथने अंतिम अधिकारमें इस तरह लिखा है....

युवतिसंगतिवर्जमष्टकं प्रत मुमुक्षुजनं भणितं भया।
सुरतरागसमुद्रगता जनाः कुरुत मा क्रुधमत्र मुनौ भयि॥९॥

जो मुमुक्षु हैं जिन्हें मोक्षकी प्राप्तिके लिये युवतिसंगका निषेध करनेवाले इस ब्रह्मचर्याष्टककी रचना की है। वह यदि भोगरूपी रागके समुद्रमें डूबे हुए ऐसे मनुष्योंको ना रुचे तो मुझे मुनि जानकर मुझ पर क्षमा करना।

अहो ! वैद्यको ऐसा कोई बंधन नहीं होता कि रोगीको मीठी दवा ही दे। रोगीका रोग कैसे मिटे इस बातके साथ बँधा हुआ होता है। कड़वी दवा भी देता है। उसी तरह मुनिराजको भी संसाररोगसे पिड़ित रोगीको रुचे, अच्छी लगे ऐसी बातका बन्धन नहीं होता। वे तो सत्यस्वरूप समझाकर मोक्षाभिलाषी जीवोंको संसाररूपी रोगसे मुक्त होनेका सत्य उपाय ही बतलाते हैं। उसी तरह पद्मनंदी आचार्य भी कहते हैं कि हमने तो सत्यमार्ग जैसा है वैसा बता दिया कि ब्रह्मचर्यमें ही आनंद है। रागमें आनंद नहीं है।

हे युवको ! भोगके रंगमें रमे हुए तुम्हें इन बातोंका कंटाला आये तो क्षमा करना किन्तु हमारे पास अन्य आशा न रखना। यहाँ कहते हैं कि वीतरागी परिणामोंमें प्रीति करो! और उसमें न रह सको तो शुभ परिणामोंमें प्रीति करो किन्तु इससे विरुद्ध बात कहनेवाले कोई प्रियमें प्रिय स्वजन हो तो उनकी प्रीति छोड़ देना। तुझे यह बात ठीक न लगे तो तेरी तूं जान ! हम तो तुझे यही मार्ग बताते हैं।

अरे! सम्यग्दृष्टि भी कभी गरीब होता है, पांच-पचीस रुपये आमदानीके लिए नहीं मिलते हों, काला-कुबड़ा शरीर हो किन्तु आत्मभान है तो उसे साधर्मिक जानकर उससे प्रीति करना और एक घरमें एक थालीमें साथमें भोजन करनेवाले प्रिय स्वजन हो और धर्मसे विरुद्ध बाते करें तो भी उसका प्रेम छोड़ देना।

तात्पर्य यह है कि यह जीव जैसी विषयसुखकी प्रीति करता है वैसी प्रीति जैनधर्मसे करे तो संसारमें भटके ही नहीं।

जैसी प्रीत हरामसे, तैसी हरिसे होय।
चला जाय वैकुंठमें, पला न पकडे कोय।।

तुलसीदासजी कहते हैं जैसा प्रेम हराम अर्थात् विषयोंके प्रति है ऐसा प्रेम यदि आत्मासे करें तो जीव मोक्षमें चला जाय। पाप-समूहको जो हरता है वह हरि है, अन्य कोई हरि नहीं है। भीतर आत्मा अकेला वीतरागताका रसकंद है, वीतरागमूर्ति है उसके जो वीतरागी परिणाम होते हैं वे ही आत्माके परिणाम कहलाते हैं। उसमें ही प्रीति कर भाई ! जैनधर्मका अर्थ ही वीतरागता है। बीचमें शुभराग आते हैं किन्तु वह कोई सच्चा जैनधर्म नहीं है। उसे व्यवहारधर्म कहा है।

भगवान आत्माको राग रहित, बंध रहित, अकेले वीतराग स्वभावरूप देखना वह ही भावश्रुतके परिणाम वह जैनशासन है। बीचमें भूमिकानुसार राग आता है उसे उपचारसे

जैनशासन कहते हैं। भावश्रुतज्ञान अर्थात् वीतरागी परिणामके द्वारा आत्माको अबद्धस्पृष्ट, अनन्य अविशेष देखता है उसने समस्त जिनशासनको देख लिया। जिनशासन कोई बहारमें नहीं होता। आत्माकी पर्यायमें प्रकट होता है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। उसमें जिनशासन नहीं होता। पर्यायमें होता है। संसार भी पर्याय है और जिनशासन भी पर्याय है। राग रहित परिणतिमें जिनशासन होता है। जिसने संपूर्ण वीतराग शासनका सार देखा है, जाना है उसने संपूर्ण जिनशासनको देखा है। वह अब संसारमें भ्रमण नहीं करेगा।

आत्मधर्ममें प्रीति करनेवाला, रुचि करनेवाला, अवलंबन लेनेवाला, आश्रय लेनेवाला, शरण लेनेवाला जीव संसारमें परिभ्रमण नहीं करता। विषयोंको प्रीति करनेवालेके तो संसारमें भूका हो जाएगा। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय आदिमें पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकता फिरेगा। वहाँ पत्नी-बच्चे कोई भी नहीं होंगे। निगोद आदिमें कितनी हलकी दशा ! कितना काल ! अहो !! इस लंबे मार्गको छोटा करनेका मार्ग तो प्रभु तेरे ही स्वरूपमें है। वीतरागी भगवानने यही कहा है। देखो ! इसमें यह बात भी आ गई कि अकेला शुभराग वह वीतराग धर्म नहीं है। निश्चयके बिना व्यवहार भी नहीं है।

यह तो योगीन्दुदेव, जंगलमें रहनेवाले संत, नग्न बादशाहोंसे दूर, उनको किसीकी भी परवाह नहीं होती। वे कहते हैं भाई ! एकबार स्वरूपकी रुचि तो कर, रुचिकी दिशा तो बदल! तेरी दशा बदल जाएगी। रागकी रुचिको छोड़ और भगवान आत्माकी रुचि कर तो उनमेंसे वीतरागी परिणाम निकलते ही रहेंगे। भगवान आत्मा उदार है। वीतराग परिणाम कितने भी निकाले तो भी वे खत्म नहीं होते।

जिसे अपने तत्त्वका, अपने स्वभावकी महिमा–आती ही नहीं है। महिमाको दूसरे ही लूट ले जाते हैं। कभी संयोगी पदार्थ महिमाको लूट लेते हैं तो कभी राग महिमाको लूट लेता है, भटनेके कारण महिमाको लूट लेते हैं।

देखो तो सही गाथा और टीका कितनी गंभीर है ! विषयोंमें जीव जैसी प्रीति करता है वैसी जिनधर्ममें प्रीति करे तो संसारमें भटके नहीं—ऐसी बात अन्यत्र भी कही है कि यह जीव जैसा विषयोंके प्रति प्रेम करता है, बारबार करता है वैसा प्रेम जिनधर्ममें करे तो संसारमें भटके नहीं। जैनधर्म यह कोई संप्रदाय नहीं है। वस्तुका स्वभाव जैसा है वैसी श्रद्धा, ज्ञान और रमणतामें शुद्ध परिणाम करना ही धर्म है। वस्तुमें कभी राग या विकार नहीं होता वस्तु तो सदा अकषायभावसे भरी है ऐसा स्वभाव ही धर्म है।

आचार्योंकी शैली ऐसी है कि एक एक गाथामें बहुत माल भरा है। अब १३५वीं गाथामें योगीन्दुदेव कहते हैं कि जिसने चित्की शुद्धता करके तपश्चरण नहीं किया उसने अपनी आत्माको ही ठग लिया है। चित्तकी शुद्धता अर्थात् वीतरागी निर्मल परिणाम। चित्त अर्थात् ज्ञानकी शुद्धि। भगवान आत्माकी ओर अन्तर्मुख होने पर जो शुद्धि होती है उसे चित्तकी शुद्धि कहते हैं और बहिर्मुख जितने परिणाम उठते है वे सब चित्तकी अशुद्धि है।

यह बात पहले समझ तो सही! श्रद्धामें इस बातको अच्छी तरहसे जमाले (बिठाले) फिर अंदरमें प्रयोग करे कि इस वस्तुमें अंदर जानेपर लाभ ही है। अन्यत्र कहीं भी लाभ नहीं। बाह्यके व्रत करे, तपश्चरण करे उसमें नाममात्र भी धर्म नहीं है। उसमें रागकी मंदताके साथ मिथ्यात्वशल्य पड़ा हुआ है तो धर्म कैसे होगा। वीतरागी दृष्टिके बिना अकेला राग किया यह तो अधर्म है।

चींटीयोंके घर तो बहुत हो लेकिन उसकी क्या कीमत ! उसी तरह बहुत से लोग रागकी मंदताकी बहुत प्रशंसा करे, उपादेय कहे उसे सर्टिफिकेट दे किन्तु वह किस कामका ! सत्यको सर्टिफिकेट अथवा बहुमतकी जरूरत नहीं होती। सत्यको तो सत्यभावकी जरूरत होती है। जिनके कलेजे काम नहीं करते ऐसे अज्ञानी लोगोंसे अभिनंदनकी आशा वह नहीं रखते। चमड़ेके वृक्षरूपी इस देहमें जिसने सम्यक् तपरूपी धर्म प्रकट नहीं किया उसके शरीरको वृद्धावस्थारूप दीमक खा जायेगी।

जेण ण चिण्णउ तव-यरणु णिम्मलु चित्तु करेवि।
अप्पा वंचिउ तेण पर माणुस जम्मु लहेवि॥१३५॥

अर्थ :–जिस जीवने बाह्याभ्यंतर तप नहीं किया, उस जीवने महा निर्मल चित्तको करके मनुष्यजन्म पाकर केवल अपनी आत्माको ही ठगा है। अंतर्मुख होकर चैतन्यका बड़ा धंधा (व्यापार) करनेके बदले ''धूल धाणी ने वा पाणी'' कर डाला। मुसाभाई के हवा-पानी जैसा मुफ्तमें ही कर डाला। सुन एक मुसाभाई थे, उसने सारी समाजको अपने घर भोजनको बुलाया और कहता है कि समाज का माल समाज खा रही है, मुसाभाईका वा अने पाणी। फिर जब पैसे लेनेवाले आये तो कहता है कि इसमें मेरा वा और पानीके अलावा कुछ भी नहीं है। समाजका माल समाजने खाया है ऐसा इस दुनियाका व्यापार धंधा सब झूठा है। समाजको भोजन कराके मुसाभाईने सबको ठग लिया। उसी तरह पत्नी-बच्चोंको वेपार-धंधेके काम करके इस जीवने क्या किया ? स्वयं अपनेको ठगा है। उसके अतिरिक्त

कुछ नहीं किया। अभी यह काम कर ले, फिर यह काम करना है, ऐसा कर करके यह जीव चला गया। अपनेको आप ही ठग लिया। वास्तवमें अन्यको तो कोई ठग ही नहीं सकता। स्वयंको ही जीव ठगता है। दूसरेका धन आदि जाता है वह तो उसके पाप कर्मके उदयसे जाता है।

योगसारमें कहते हैं कि कौन किसकी पूजा करे, किसके साथ द्वेष करे ! कोई किसीका मित्र अथवा शत्रु नहीं है यह तो मुफ्तमें ही कल्पना करता है।

ऐसा दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर हे जीव ! तूने स्वयंको ही ठग लिया है। अपना कार्य तो कुछ किया नहीं और मैं दूसरोंके कार्य करता हूँ ऐसा मानकर तूने अपने आपको ही ठग लिया। अपनेमें वीतरागी परिणाम किये नहीं, मुनिपना पाला नहीं, जो करना था वह तो किया ही नहीं। भैया ! तूने अपने आपको ठग लिया अब बता तूं कहाँ जाएगा।

भावार्थ :—महान दुर्लभ मनुष्यदेह कितनी दुर्लभतासे मिलती है। चिंटी, कुत्ता, बिल्ली, कौएके भव करते करते किसी महान पुण्योदयसे यह मनुष्यदेह मिला है। उसमें अकेले पर तरफके प्रेमसे राग-द्वेष और विषय-कषायोंका सेवन किया-उसीका प्रेम किया और वीतराग चिदानंद एक सुखरूपी अमृतको पीकर अपने चित्तको निर्मल करके अनशनादि तप नहीं किया तो वह आत्मघाती है। अपनी आत्माको ठगनेवाला है। अहो ! वीतराग भावरूपी अमृतकी पर्यायसे पूर्ण घड़ा उसे यहाँ चित्तशुद्धि कहते हैं; उसकी प्राप्ति होने पर भी तप नहीं किया तो तूने आत्माको ही ठग लिया, आत्माका उद्धार नहीं किया।

(क्रमशः) ❑

इस संसारमें जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है । उसे किसीका साथ नहीं है । मात्र भ्रान्तिसे वह दूसरेकी ओट और आश्रय मानता है । इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्डमें अकेले भटकते हुए जीवने इतने मरण किये हैं कि उसके मरणके दुःखमें उसकी माताकी आँखोंसे जो आंसू बहे उनसे समुद्र भर जायें । भवपरिवर्तन करते-करते बड़ी मुश्किलसे तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, ऐसा उत्तम योग मिला है, उसमें आत्माका हित कर लेने जैसा है, बिजलीकी चमकमें मोती पिरो लेने जैसा है । यह मनुष्यभव और उत्तम संयोग बिजलीकी चमककी भाँति अल्प कालमें विलीन हो जायेंगे । इसलिये जैसे तू अकेला ही दुःखी हो रहा है, वैसे अकेला ही सुखके मार्ग पर जा, अकेला ही मुक्तिको प्राप्त कर ले।।

बहिनश्रीके वचनामृत, बोल नं. 357

वैभवशाली भगवान आत्माके लक्ष्यसे प्रकट होता है

आत्मवैभव

प्रकाश शक्ति

स्वयंप्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः।

ज्ञानस्वरूप आत्मामें एक प्रकाशशक्ति है। उस शक्तिके बलसे आत्मा अन्यकी सहायताके बिना ही स्वयं स्वयंको स्पष्ट प्रकाशमान करता है और स्वानुभव करता है। इस शक्तिकी अचिंत्य महिमा है।

जब जिस शक्तिकी बात आती है तब उसीके गीत गाये जाते हैं। बाकी तो हरएक शक्ति संपूर्ण आत्माको प्रसिद्ध करनेवाली है। प्रत्येक शक्ति संपूर्ण सामर्थ्यसे भरी हुई है और विकारके अभावरूप है। किसी एक शक्तिको भिन्न करके उसका आश्रय नहीं लिया जा सकता क्योंकि शक्ति और शक्तिमान भिन्न-भिन्न नहीं है। गुण और गुणी भिन्न नहीं है अर्थात् द्रव्यकी शक्ति अथवा गुणका स्वरूप पहिचानने पर अनंतधर्म संपन्न संपूर्ण द्रव्यकी पहिचान हो जाती है। उसकी प्रतीतिसे सम्यग्दर्शन होता है। उसमें कहीं भी रागका अथवा निमित्तका अवलंबन नहीं है। उनके अवलंबनके बिना ही आत्मा अपनेको स्पष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष प्रकाशमान करता है ऐसा ही आत्माका प्रकाश स्वभाव है।

इसमें दो बातें आती हैं एक तो स्वानुभवमें आत्मा स्वयंको स्पष्ट प्रकाशमान करता है और वह स्वभाव स्वयं प्रकाशमान है, उसमें आत्माके अलावा किसी अन्यका कोई हस्तक्षेप नहीं है। ऐसे स्वसंवेदनकी शक्तिवाला आत्मा है।

रागके कारण आत्मा प्रत्यक्ष होता है—ऐसा नहीं है। जिसने रागको आत्माके स्वसंवेदनका साधन माना उसने स्वसंवेदनकी प्रकाश शक्तिवाले आत्माको जाना ही नहीं। उसने तो रागको ही आत्मा माना है। राग द्वारा आत्माका अनुभव होना माने उसने रागको ही आत्मा माना है। अंतरंगमें सूक्ष्म गुण-गुणीके भेदके विकल्पोंकी ऐसी ताकात नहीं है कि आत्माको प्रत्यक्ष कर सके। ऐसे वैभवशाली आत्माको विकल्पमय माना वह तो उसका अपवाद करने जैसा हुआ। जिस प्रकार कोई बड़े राजाको भिखारी कहकर बुलावे तो उसमें राजाका ही अपमान होता है। उसी प्रकार जगतमें सबसे बड़ा यह चैतन्यराजा है। वह एक

तुच्छ रागसे प्राप्त होता है ऐसा मानना ही आत्माका बहुत बड़ा अपमान है।

बड़े अपराधकी बड़ी सजा होती है। इस अपराधकी सजा संसाररूपी जेल है। भैया ! इस संसारकी जेलमें तूं अनंतकालसे बंद है। अब यदि तुझे इस कैदखानेसे छूटना है तो चैतन्यराजा जैसा है वैसा उसे मान ! अरे ! अनंत गुणके वैभवसे भरे चैतन्यभगवानको रागगम्य मानना वह तो उसे रागी माननेके बराबर है। सम्यग्दर्शनने संपूर्ण आत्मद्रव्यको स्वीकार किया है। उसमें प्रकाशशक्तिका साथमें ही स्वीकार है। अर्थात् रागरहित स्वसंवेदन होता है ऐसे आत्माको सम्यग्दर्शनने स्वीकार किया है। रागवाला आत्मा सम्यग्दर्शनने स्वीकार किया नहीं है। रागवाला आत्मा है ऐसा माननेवालेने सम्यग्दर्शनका ही स्वीकार नहीं किया। सम्यग्दर्शनमें आत्माके अनंत गुणोंका निर्मल कार्य होता है किन्तु उसमें राग नहीं।

हे जीव ! एकबार तू अपनी कार्यशक्तिको स्वकी ओर उल्लसित करके अपने ऐसे स्वभावकी हाँ तो कर !! पुरुषार्थकी तीव्र धारासे एकबार अपने द्रव्यस्वभावका अपूर्व पक्ष कर, उसका उल्लास ला। ऐसे स्वभावका यथार्थ निर्णय करे उसे स्वसंवेदन हुए बिना रहता ही नहीं। आत्माका ऐसा स्वसंवेदन वही सच्चा धर्म है, वह ही मोक्षमार्ग है। रागका अनुभव जीवको अनादिसे है। वह कुछ धर्म नहीं है। रागादिभावका अनुभव वह तो कर्मचेतना है। भगवान आत्माको अनुभवमें लेनेकी ताकात उसमें नहीं है। अंतरंगमें परिणमित हुई ज्ञानचेतनामें ही भगवान आत्माको अनुभवमें लेनेकी सामर्थ्य है।

भैया ! तेरे अंतरके शुभ विकल्पोंमें स्वसंवेदन करनेकी शक्ति नहीं है। तो फिर आत्मासे भिन्न बाह्य वस्तुमें स्वसंवेदन करनेकी शक्ति कहाँसे होगी ? इसलिए रागकी-व्यवहारकी और पराश्रयकी रुचिको छोड़, तब ही तुझे परमार्थ स्वरूप भगवान आत्मा अनुभवमें आयेगा। निमित्तका और व्यवहारका आश्रय छोड़कर द्रव्यस्वभावका आश्रय करें तो पर्यायमें स्वसंवेदन–प्रत्यक्ष प्रगट हो और तभी वास्तवमें आत्माको माना कहलायेगा ? ऐसे अनुभवके पश्चात् विकल्पके समय धर्मात्माको ऐसा बहुमानका भाव आता है कि अहो ! मुझे तीर्थंकर भगवानकी दिव्यध्वनि श्रवण करनेको मिली थी, उसमें ऐसे ही स्वभावको भगवान दर्शाते थें। संत उसी वाणीको सुनकर ऐसे ही स्वभावका अनुभव करते थे। ऐसे वीतरागी देव-गुरु मेरे स्वसंवेदनमें निमित्त होते हैं। इस प्रकार धर्मात्माको विनय और बहुमानका भाव आता है। इस तरह उसे परमार्थ सहित व्यवहारका और निमित्तका भी सच्चा ज्ञान होता है। अज्ञानीका एक भी ज्ञान सच्चा नहीं है।

आत्मा दिव्य वस्तु है। अनंत शक्तिका दिव्य वैभव उसमें भरा है। इसकी प्रत्येक शक्तिमें दिव्यता है। ज्ञानमें ऐसी दिव्यता है कि केवलज्ञान प्रकट हो। श्रद्धामें ऐसी दिव्यता है कि क्षायिक सम्यक्त्वको दे, आनंदमें ऐसी दिव्यता है कि अतीन्द्रिय आनंदको दे। प्रकाश शक्तिमें ऐसी दिव्य सामर्थ्य है कि अन्यकी अपेक्षाके बिना ही अपने ही स्वसंवेदनसे आत्माको प्रत्यक्ष करें।

ऐसी दिव्य शक्तिमान आत्माको देखे तो दिव्यदृष्टि प्रगट हो जाती है। तुझे आत्माका वैभव देखना हो तो तेरी दिव्य आँखोंको खोल। बाह्यके चर्मचक्षुसे वह नहीं दिखेगा। भीतरके रागके आँखसे भी वह नहीं दिखेगा, किन्तु चैतन्यके ज्ञानचक्षु खोल फिर देख तो तुझे तेरा दिव्य वैभव दिखेगा। चैतन्यदरबारकी शोभा कोई अद्‌भुत और आश्चर्यकारी है।

प्रभु! यह जो कुछ कहनेमें आ रहा है वह सब तुझमें विद्यमान है। तेरे आत्मवैभवकी बात संत तुझे समझाते हैं। वाह रे चैतन्यप्रभु !! तेरी प्रभुता !! अकेले ज्ञानप्रकाशका पूंज, अकेले आनंदका धाम ! ऐसी अनंत शक्तिओंके धामरूप आत्मा है। वह शक्तियाँ कारणरूप है और कारणमेंसे कार्य आता ही है। सत्य कारणके स्वीकारसे कार्य होता ही है। कारणका ही जब स्वीकार न हो तो कार्य कहाँसे आयेगा? जब कारणरूप रागका ही स्वीकार है तब कार्यमें भी राग आयेगा। रागरूप कारणोंमेंसे वीतरागी भाव कहाँसे आयेगा? भगवान आत्माकी अनंती शुद्ध शक्तियाँ है उनका स्वीकार (अर्थात् उनकी सन्मुखता होने पर) वह केवलज्ञानादि शुद्ध कार्य देता है ऐसी उसमें ताकात है। आत्माका शुद्ध कार्य देनेकी ताकात किसी अन्यमें नहीं है। अनंत कारणशक्तिओंसे पूर्ण अपने चिदानंद स्वभावमें दृष्टि करते ही मिथ्यात्वका नाश होता है और उसमें लीन होते ही अस्थिरताका नाश होता है। इस तरह निर्मल कारणके स्वीकारसे निर्मलकार्य प्रकट हो जाता है। अन्य कोई भी बाह्यमें कारण है ही नहीं।

स्वसन्मुख होकर आत्माका स्वसंवेदन जिसे प्रगट हुआ उसमें तो भाई ! चैतन्यका वीररस प्रगट हुआ। स्वानुभवका वीर्य प्रगट हुआ। वह अब कायरताको (परभावोंको) अपनेमें नहीं आने देगा। अपनी रक्षाके लिए उसे रागादिकी मदद नहीं होती। रत्नत्रयके साधक कोई मुनि संथारो (समाधिमरण) धारण करे तो वैयावृत्य करनेवाले अन्य मुनि उसे चैतन्यके उपदेशसे वीरता उत्पन्न कराते हैं। कभी किसी मुनिको थोड़ा जलका विकल्प आ जाये तो अन्य मुनि वैराग्यसे कहते हैं कि अरे मुनि ! अंदर चैतन्यका आनंदरस भरा है उस

आनंदरसको पीलो न ! अभी तो स्वानुभवके निर्विकल्प अमृतको पीनेका अवसर है। यह जल तो अनंतबार पिया उससे तृषा तृप्त नहीं हुई। इसलिए निर्विकल्प होकर भीतरके स्वानुभवके आनंदरसका पान करो। तब वह (समाधिमरण करनेवाले) मुनि भी दूसरे ही क्षण विकल्पको तोड़कर निर्विकल्प आनंदके समुद्रमें मग्न हो जाते हैं। उस आनंदके लिए अपनी आत्माके सिवा अन्य किसीका कोई अवलंबन नहीं होता।

सम्यग्दर्शन होनेके समय जो स्वसंवेदन हुआ वह प्रत्यक्ष है। उसमें व्यवहारके आलंबनका अभाव है ऐसा अनेकांत है। वात्सल्य, स्थितिकरण, प्रभावना आदि प्रशस्त व्यवहारका उपदेश शास्त्रमें आता है उन सभी शुभ विकल्पोंसे भिन्न अंतरमें स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे जो परिणति धर्मात्माको वर्तती है वह ही मोक्षमार्ग है। धर्मात्माको भीतर चिदानंद स्वभावके स्वसंवेदनका जोर वर्तता है, वह स्वयं प्रकाशमान है। उसमें अन्य किसीकी मदद नहीं होती अथवा अस्पष्टता भी नहीं होती। अहो ! ऐसे आत्मस्वभावका जिसे स्वसंवेदन हुआ वह अब परमात्मासे अलग रह ही नहीं सकता। स्वसंवेदनके बलसे अल्पकालमें केवलज्ञान प्रगट करके वह स्वयं परमात्मा हो जायेगा और अनंत सिद्ध भगवंतोंके साथ रहेगा।

अरे जीव ! ऐसे जैनदर्शनमें अर्थात् सर्वज्ञ परमात्माके मार्गमें तूने जन्म लिया और सर्वज्ञदेवके कहे हुए तेरे स्वभावको लक्षमें भी न ले तो तुझे क्या लाभ ? ऐसा अवसर तो चला जायेगा। अपने स्वभावमें जो वैभव भरा हुआ है उसे श्रद्धाके द्वारा खींचके बाहर निकालो। जैसे भीतर पानी भरा होता है वह फुहारेमें उछलता है। उसी तरह भीतर चैतन्यकी शक्तिके पातालमें जल भरा है उसमें अंतर्दृष्टि करनेसे वह पर्यायमें उछलता है।

आत्मा स्वयं अपनेको आपरूप प्रगट-स्पष्ट-प्रत्यक्ष वेदनमें आये और उसमें परोक्षपना या अस्पष्टपना न रहे ऐसा जिसका प्रकाशस्वभाव है। प्रकाशके साथ अंधेरा कैसे ? चैतन्यज्योत जागती प्रकाशमान है। वह दृष्टिहीन नहीं है कि स्वयं स्वयंको न जाने।

भैया ! तेरी प्रकाशत्व शक्तिका तू विश्वास कर, उसका विश्वास कर तो पर्यायमें वह न प्रगटे ऐसा बने ही नहीं। वर्तमान पर्याय अल्पशक्तिवाली होने पर भी अंतर्मुख होकर अनंत गुणरत्नोंसे भरे संपूर्ण अद्भुत प्रतीतिमें अनुभवमें ले ऐसी अद्भुत ताकात तुझमें है। द्रव्य-स्वभावमें अद्भुत ताकात है। उसके सन्मुख होनेपर पर्यायमें भी अद्भुत ताकात प्रगटती है। पर्याय स्वयं एक समयकी होने पर भी अनंत गुणके त्रिकाली पिंडको स्वीकार करे– उस पर्यायकी शक्ति कितनी ?

भगवान ! अपनी शक्ति तो देख ! जिसके सामने दृष्टि करते ही अमृतकी रेलमछेल होती है ऐसे तेरे वैभवकी बात अमृतचंद्राचार्यदेवने की है। भगवानने जैसा आत्मा देखा वैसा ही आत्मा बताया और तुम स्वसंवेदनसे प्रत्यक्ष देख सकते हो–ऐसा तुझमें सामर्थ्य है। समयसारके प्रारंभमें ही आचार्यदेवने कहा है कि हम स्वानुभवरूपी निजवैभवसे शुद्ध आत्माका स्वरूप तुझे कहते हैं तो तुम भी अपने स्वसंवेदनसे उसका प्रमाण करना अर्थात् ऐसा प्रत्यक्ष स्वसंवेदन करनेकी आत्मामें सामर्थ्य है। इसलिए 'हमारी समझमें नहीं आता ऐसा बहाना निकाल दे और सिद्ध भगवानको अंतरमें स्थापन करके स्वसंवेदनसे आत्माको अनुभवमें लेना। तेरा परोक्ष रहनेका स्वभाव नहीं है किन्तु स्वयं अपनेको प्रत्यक्ष होनेका स्वभाव है।

अहो ! आत्मा अपनेको प्रत्यक्ष होता है यह बात अलौकिक है जैसे बहुमूल्य हीरेकी कीमत की तो बात ही क्या ? किन्तु उसकी रज भी मूल्यवान होती है। उसी तरह जगतमें सर्वश्रेष्ठ ऐसे इस चैतन्यहीरेका स्वसंवेदन करे उसके आनंदकी तो क्या बात ! किन्तु जो बहुमानपूर्वक श्रवण-मनन करे तो उसका फल भी अलौकिक है। उसके विकल्पमें जो पुण्यबंध होता है वह भी ऊँचे प्रकारका होता है।

स्वयं प्रकाशमान ऐसे आत्मस्वभावका लक्ष होने पर पर्यायमें उसका परिणमन प्रकट होता है अर्थात् स्वसंवेदन होता है। गुणी ऐसे स्वभावके आश्रयसे उसका वेदन होता है। किसी निमित्त, परके, रागके, गुणभेदके आश्रयसे उसका वेदन नहीं होता है। वर्तमान पर्याय भीतर तन्मय होकर संपूर्ण स्वभावको स्वसंवेदनमें लेती है—ऐसी उसकी अद्‌भुतता है और उसके साथ ही प्रशांत आनंदरस भी साथ ही होता है।

इस तरह ज्ञानभावमें प्रकाश शक्तिमें स्पष्ट स्वसंवेदनरूप कार्य भी स्वयं प्रकाशमान होता है यह बतलाया। प्रकाशशक्तिका वर्णन पूरा हुआ। (क्रमशः)✻

(पृष्ठ १७ का शेष भाग)

आगमपद्धति अनादिकी है और अध्यात्मपद्धतिरूप साधकदशा असंख्य समयकी होती है। कोई साधकदशामें अधिक समय तक हो तो भी वह असंख्य समय ही होता है, उसे अधिक नहीं हो सकती और इसलिए किसी जीवको साधकदशामें कमसे कम भाव रहकर सिद्ध होने तक तो साधकदशामें असंख्य समय तो होगी ही। संसारमें हरेक जीवको यह सभी भाव होते हैं ऐसा नियम नहीं है। जिन्हें जो लागु पड़ता है वह समझ लेना। *(क्रमशः)*

आगमरूप कर्मपद्धति वह व्यवहार
अध्यात्मरूप शुद्ध चेतनापद्धति वह मोक्षमार्ग

(पं. श्री बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

''आगमरूप धर्मपद्धति है;

अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति है। उसका स्पष्टीकरण—

* कर्मपद्धति पौद्गलिक द्रव्यरूप अथवा भावरूप है। द्रव्यरूप तो पुद्गलके परिणाम है, भावरूप पुद्गलाचार आत्माकी अशुद्ध परिणतिरूप परिणाम है, उन दोनों परिणामोंको आगमरूप स्थापन किया।

* अब शुद्धचेतनापद्धति अर्थात् शुद्ध आत्मपरिणाम; वह भी द्रव्यरूप और भावरूप दो प्रकारसे होती है। द्रव्यरूप तो जीवत्वपरिणाम और भावरूप ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य आदि अनंत गुणपरिणाम–इन दोनों परिणामोंको अध्यात्मरूप जानना।

इस आगम और अध्यात्म दोनों पद्धतियोंमें अनंतता मानना।

देखो ! अब इस सूक्ष्म बातको ! किन्तु वह भी है तो जीवके निज परिणामकी ही बात। जीवकी पर्यायमें किस किस प्रकारके भाव होते हैं वह समझनेकी यह बात है। इसलिए ध्यान रखकर समझने जैसी बात है।

(टिप्पणी : प्रथम नियमसार गाथा १५के साथ मिलान करके यहाँ अध्यात्मरूप शुद्धचेतना-पद्धतिका अर्थ 'कारणशुद्धपर्याय' वैसा करते थे और हरएक जीवमें वह त्रिकाल है ऐसा कहते हैं परंतु बादमें तो उस संबंधमें और स्पष्टता होने पर नियमसारकी कारणशुद्धपर्यायसे भी यहाँका विषय भिन्न है ऐसा लगता है। यहाँ कही हुई अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति वह मोक्षमार्गरूप निर्मल पर्याय है और वह सभी जीवोंमें त्रिकाल नहीं होती किन्तु समुच्चयरूपसे जगतमें वह सदा होती है–ऐसा समझना। इसी भाग (अंश) पर पहले हुए प्रवचनोंको भी इसी अर्थके साथ मिलान करके समझ लेना। –सं)

आत्माकी परिणतिमें अशुद्धता अनादिसे है, वह स्वभावगत भाव नहीं है किन्तु आगन्तुक-विकारी भाव है। वे परिणाम स्वभाव–आकाररूप नहीं है। इसलिए उनको पुद्गलाकार कहा है, क्योंकि पुद्गलकर्म उनमें निमित्त है। पुद्गलकर्मकी परंपरा वह द्रव्यरूप कर्मपद्धति और उसके निमित्तसे होनेवाले जीवकी विकारकी परंपरा वह भावरूप कर्मपद्धति है। इस प्रकार द्रव्य और भावकर्मकी परंपरारूप आगमपद्धति है। इन दोनों भावोंको जीवद्रव्यके कहे हैं।

श्रोता :—जो द्रव्यकर्मकी परंपरा है वह तो पुद्गलकी पर्याय है। फिर भी उसे यहाँ जीवका भाव क्यों कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–वह पुद्गलकी पर्याय है यह बात तो सत्य है; परंतु जीवके अशुद्ध भावके साथ उनका संबंध है। जीवके अशुद्ध भावके साथ मिलान करना वह उसका परिणमन है। इसलिए यहाँ उसे भी कर्मपद्धतिको जीवके भाव कह दिया है। जीवके साथ जिनका संबंध नहीं है ऐसे अनंत परमाणु जगतमें है किन्तु उनकी बात यहाँ नहीं है।

यहाँ तो जीवके परिणामके साथ जिनका निमित्त-नैमित्तिक संबंध है ऐसे पुद्गलकी यह बात है। लकडी-घर-शरीर आदिका संबंध तो जीवको कभी होता है अथवा कभी नहीं भी होता, परंतु संसारमें जीवको कर्मका संबंध तो हंमेशा ही होता है। इस संबंधको बताते हुए उसे भी जीवका भाव बताया है ऐसा समझना चाहिए।

आत्मद्रव्य और उसमें ज्ञानादि गुणोंका जो शुद्धपरिणाम है वह अध्यात्मपद्धतिरूप है; यह अध्यात्मपद्धति शुद्धचेतनारूप है इसलिए उसमें विकार अथवा कर्मोंका संबंध नहीं आता। द्रव्यका शुद्धपरिणाम वह द्रव्यरूप शुद्धचेतनापद्धति है और ज्ञान-श्रद्धा-चारित्र आदि गुणोंके शुद्धपरिणाम वह भावरूप शुद्धचेतनापद्धति है। । इन दोनों परिणामोंको अध्यात्मरूप जानना।

आगमपद्धति संसारका कारण है, अध्यात्मपद्धति मोक्षका कारण है, जिनसे कर्मबंध हो वे सभी भाव आगमपद्धतिमें जाते हैं। व्यवहाररत्नत्रयमें जो शुभराग है वह भी आगमपद्धतिमें निहित है; शुद्धचेतनारूप जितने भाव हैं वे सभी अध्यात्मपद्धतिमें आते हैं। इस तरह पद्धतिकी धारा ही एक-दूसरेसे भिन्न है। इन दोनों पद्धतियोंमें अनंतता माननी; आत्माके विकारीभावोंमें अनंत प्रकार है और उसमें निमित्तरूप कर्ममें भी अनंत प्रकार है। आत्माके निर्मल परिणामोंमें भी अनंतगुणोंके अनंत प्रकार है। ज्ञानादि गुणोंके परिणमनमें भी अनंत प्रकार है। इस तरह अशुद्धता या शुद्धता इन दोनोंमें अनंतता समझनी चाहिए।

जैसे समयसारमें अज्ञानीको पुद्गलकर्मके प्रदेशोंमें स्थित कहा, उसी तरह अशुद्ध-परिणामको पुद्गलाकार कहे हैं। वह आत्माके स्वभावकी जातिके नहीं है, इसीसे उनको आत्म-आकार नहीं कहा, आत्माके आश्रयसे प्रकट हुए आत्माके शुद्ध परिणाम वे ही आत्म-आकार है। उनसे पुद्गलका संबंध नहीं है। आत्माके स्वभावके साथ संबंधवाले जो भाव होते हैं वे ही आत्माको सुखके कारण है। पुद्गलके साथ सम्बन्धवाले जो भाव होते हैं

वे भाव आत्माको सुखका कारण नहीं है। इसीलिये वे भाव उपादेय भी नहीं है। वे तो महेमानके समान आनेवाले भाव है। वे कुछ अपने घर (स्वभाव)मेंसे प्रकट नहीं हुए है और घरमें रहनेवाले नहीं है। उन भावोंमें वास्तवमें आत्मा नहीं है। उसमें मोक्षमार्ग नहीं। जो कोई शुभाशुभभाव है उनमें आत्माका अधिकार नहीं है किन्तु आस्रवका अधिकार है। बंधका अधिकार है। उन विकारी भावोंका स्वामीपना आस्रव और बंध तत्त्वोंसे है। आत्माके स्वभावको उनका स्वामिपना नहीं है। इसलिए उनमें आत्माका अधिकार नहीं है। आत्माका अधिकार तो शुद्ध चेतनापरिणाममें है।

आगमपद्धति तो उदयभावरूप है और अध्यात्मपद्धति उपशम-क्षायिक अथवा सम्यक्- क्षयोपशमभावरूप है। पुण्य-पाप-आस्रव-बंध और अजीवकर्म यह पाँचों तत्त्वोंका आगमपद्धतिमें समावेश है और संवर-निर्जरा-मोक्ष और शुद्धजीव यह चार तत्त्व अध्यात्मपद्धतिमें समाते हैं। इस तरह दोनों पद्धतियाँ एक दूसरेसे विलक्षण है। उनका स्वरूप पहिचाने तो भेदज्ञान हो जाता है और मोक्षमार्ग प्रगट होता है। इसलिए अपनेमें अध्यात्मकी परंपरा विकसित होती है और आगमकी (कर्मकी तथा अशुद्धताकी) परंपरा तूटना शुरू होती है।-इसका नाम धर्म है। ऐसी अध्यात्मपद्धति (अर्थात् शुद्ध परिणामकी परंपराकी) शरूआत चतुर्थ गुणस्थानसे हो जाती है। चतुर्थ गुणस्थानसे चौदहवें गुणस्थानपर्यंत अध्यात्मपद्धति है।

किन्तु वहाँ जितनी अशुद्धता और कर्मका सम्बन्ध है उतनी आगमपद्धति है। वह संपूर्णता छूट जाते ही संसार छूट जाता है और सिद्धदशा प्रगट होती है। वहाँ फिर पुद्गलकर्मके साथ बिलकुल भी सम्बन्ध नहीं रहता है और संसारकी अनादिकी परंपराका भी अत्यंत छेद हो जाता है।

अज्ञानी तो आगमपद्धतिको अर्थात् विकारको और कर्मके सम्बन्धको ही जीवका स्वरूप मानता है। जीवके शुद्ध स्वरूपका उसे ख्याल नहीं है इसलिए उसे अध्यात्मपद्धति अथवा आगमपद्धति दोनोंमेंसे एकका भी ज्ञान नहीं है। उसे आगमपद्धति तो है परंतु आगमपद्धतिका ज्ञान उसे नहीं है। शुभराग आदि आगमपद्धतिको ही वह अध्यात्मपद्धति मान लेता है-यह बात आगे आयेगी। आगम और अध्यात्मपद्धतिका सच्चा ज्ञान सम्यग्ज्ञानीको ही होता है।

संसारमें आगम और अध्यात्मपद्धति दोनों त्रिकाल है किन्तु व्यक्तिशः एक जीवको

(शेष देखे पृष्ठ १४ पर)

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :—*मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ ऐसा निर्णय करके ज्ञायकमें प्रयोग करने जाते हैं तो रूखापन हो जाता है, रसात्मक नहीं लगता। तो कैसा पुरुषार्थ करना चाहिये, वह समझानेकी कृपा करें।*

समाधान :—ज्ञायक अर्थात् उसमें मात्र जानना है ऐसा रूखा ज्ञायक नहीं है। ज्ञायक वह कोई अनुपम ज्ञायक है, कोई अनूठा ही ज्ञायक है। ज्ञायक अनन्तानन्त गुणोंसे भरा हुआ है। उसका ज्ञानस्वभाव अनन्त–अगाध है। ऐसा जाननेका जिसका अचिंत्य स्वभाव है, वह स्वयं ज्ञायक है। परको जानता है इसलिये ज्ञायक नहीं है, स्वयं ज्ञायक है। उस ज्ञायकमें अनन्तता भरी है। ज्ञायक उसे कहते हैं कि जो एक समयमें संपूर्ण जान सके। एक समयमें स्वयं सर्वत्र पहुँच जाय और स्वयं अपने क्षेत्रमें रहकर सबको जाने ऐसी ज्ञानकी कोई अचिंत्य शक्ति है। उस ज्ञानके साथ आनन्द-गुण भी है। ज्ञायक आनन्दसागरसे भरपूर है। बाह्यमें जिस आनन्दकी मान्यता है वह सच्चा आनन्द नहीं है। स्वयं ही आनन्दका सागर है। ऐसा कोई अनुपम ज्ञायक है उसकी प्रतीति आनी चाहिये, तो उसे ज्ञायक रसात्मक लगे। यदि ज्ञायककी यथार्थ प्रतीति न आये तो मात्र रूखा ज्ञान हो जाय। उसे अंतरसे ज्ञायककी ऐसी प्रतीति आनी चाहिये कि ज्ञायक कोई अपूर्व है। जिनेन्द्रदेवने केवलज्ञानकी जैसी अपूर्व दशा प्रगट की वैसी अपूर्व दशा प्रगट हो वैसी शक्ति मेरे ज्ञायकमें विद्यमान है—इसप्रकार उसकी महिमा आनी चाहिये। ज्ञायककी प्रतीति अंतरसे आनी चाहिये कि मेरा ज्ञायक कोई अनूठा–अपूर्व है। उस ज्ञायकके बिना मुझे चल ही नहीं सकता। ज्ञायकके आश्रय–ज्ञायकके तलको ग्रहण किये बिना मुझे चल ही नहीं सकता—ऐसी ज्ञायककी महिमा उसको अंतरमेंसे आनी चाहिये।

प्रतिक्षण मुझे ज्ञायक ही चाहिये, मैं ज्ञायकका आश्रय और ज्ञायकका आँचल पकड़े रहूँ, मुझे निरंतर ज्ञायकका ही आश्रय रहे, उसका दामन छूटे ही नहीं—ऐसी महिमा आनी चाहिये। वैसी महिमा, ज्ञायकका बारंबार अभ्यास करनेसे प्रगट होती है और तब ज्ञायक रसमयात्मक लगता है।

बाह्यमें–शुभभावोंमें जैसे देव–शास्त्र–गुरुका आश्रय लेता है वैसे ही अंतरमें ज्ञायकका आश्रय आना चाहिये। अंतरमें ज्ञायकदेव परमात्मा है, वह चैतन्यचमत्कारसे भरा हुआ है; वह प्रगट हो तो उसका अचिंत्य चमत्कारी स्वरूप ज्ञात होता है। उसकी प्रतीति ऐसी आये कि ज्ञायकके बिना चले ही नहीं, तो ज्ञायक रसमयात्मक लगे और तब उसका पुरुषार्थ आगे बढ़े।

प्रश्न :— *आत्माको प्रसिद्ध करनेवाला द्रव्यविशेष (पर्याय) है, तो द्रव्यविशेषकी महिमा क्यों नहीं आती ?*

समाधान :—द्रव्यसामान्य और द्रव्यविशेष दोनों अनादि वस्तु हैं। सामान्यकी महिमा है वैसे ही विशेषकी भी महिमा है। सामान्यकी महिमा इसलिये है कि वह अनन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण है, उसमेंसे पर्यायें प्रगट होती हैं। अनादिसे जीवने सामान्यका आश्रय नहीं किया है। द्रव्य अनन्त शक्तियोंसे भरा है, उसका आश्रय करे तो उसमेंसे पर्यायें प्रगट होती हैं। द्रव्य शक्तियोंका भंडार है, इसलिये उसकी महिमा की जाती है।

पर्यायकी भी महिमा होती है। केवलज्ञानकी महिमा, मुनिदशाकी महिमा तथा स्वानुभूतिकी महिमा होती है। पंचपरमेष्ठी पूजने योग्य हैं, आदरणीय हैं, नमस्कार करने योग्य हैं; उन्होंने द्रव्यदृष्टिपूर्वक अंतरमेंसे वीतरागताकी पर्याय प्रगट की है, इसलिये वे पूजनीय हैं। इसलिये विशेषकी भी महिमा होती है।

सामान्यके आश्रयपूर्वक जो विशेष प्रगट हो वह विशेष भी पूज्य है। सब अपेक्षायें समझनी चाहिये।

(पृष्ठ २१ का शेष भाग)

मरेगी ही किन्तु मुझे मरवानेका षड्यंत्र भी बनायेगी। इस प्रकार अनेक विचार करके मैंने पूर्ववत् सभी वस्त्राभूषण धारण किये। उस समय मुझे ऐसा लग रहा था कि सर्व दुःखोंका समूह मेरे पूरे शरीरसे आलिंगिक हो रहा है।

राजन् ! सर्व शुभाशुभ, जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख-दुःख और शत्रुकृत हत्याके ज्ञाता, विपुल बुद्धिके धारक तथा समग्र ऋद्धिके समूह जिनके हस्तगत हैं ऐसे योगीश्वर भी स्त्रीयोंके चरित्रको नहीं जान सकते तो फिर अन्य पुरुषोंकी तो क्या बात ?

हाथीको बांध सकते हैं, सिंहको रोक सकते हैं और रणांगणमें (संग्राममें) बलवान शत्रुको भी परास्त किया जा सकता है। परंतु परपुरुषासक्त स्त्रीओंके चित्तको कोई भी बांध नहीं सकता।

नृपवर ! इसप्रकारके विचार करता हुआ मैं उदास मनसे राज्यसभामें गया और वहाँ रत्नजड़ित सिंहासन पर उपस्थित हुआ उस समय समस्त सभा अनुकूल थी तो भी मुझे-यशोधर राजाको दुःखकर ही लगती थी। *(क्रमशः)*

श्री पुष्पदंत–कविकृत

यशोधर चरित्र

(गतांकसे चालु)

मारिदत्त महाराजको क्षुल्लक महाराज फिरसे कहने लगे कि : राजन् ! इस प्रकारसे व्यभिचारिणी स्त्रीयोंका दुष्चारित्रका चिंतवन करते हुए जब मैं यशोधर सो रहा था तभी वह पसीनेमें लथपथ अमृतादेवी अपने प्रेमी कुबड़ेसे रमण करके मलिन मुख लेकर मेरे पास आकर सो गई, वह मुझे जहरीलि नागिनके समान लगी अथवा फिर मरी हुई डाकन ही मेरे ही पास आकर मुझसे लिपट गई।

नृपवर ! उस समय जब कि वह मेरे बाजुमें ही सो रही थी फिर भी मैं अपने मनमें चिंतवन करने लगा कि जैसे खुजलीको खुजानेमें सुख होनेके बाद दुःख ही होता है उसी प्रकार विषय सेवनमें सुख होता है। जो आभूषणोंका भार है वह सभी अंगोंको कष्ट पहुँचाता है और नृत्य आहारका दमन करता है वैसे ही शरीरका है। वह सुंदरता लावण्यताकी अशुचिरसको उत्पन्न करनेवाली होती है।

जो स्नेहका बंधन है वह दुःखका कारण है और जो स्त्रीके सौंदर्यका अवलोकन है वह कामज्वरको वृद्धिगत करनेवाला है। प्रियाका आलिंगन है वह शरीरको दुःख उत्पन्न करनेवाला है। जो निरंतर स्त्रीके अनुबंधमें राग है वह दुःखसे भरी जेल समान है और जो प्रेम है वह ईर्ष्याकी अग्नि है। उसमें जलता हुआ पुरुष आकुल-व्याकुल होता है और स्त्री-सेवनादि क्रियासे उत्पन्न होता हुआ काम है वह स्त्रीयोंके हाथका तीक्ष्ण हथियार है। उसीके द्वारा दुष्ट व्यभिचारिणी परपुरुषता वनिता अपने पतिकी हत्या करके पश्चात् स्वयं मरणको प्राप्त करके संसारवनमें भटकती है।

जीवोंको जो बाधाकारक विस्तीर्ण और उत्कृष्ट दुष्कृत्यका घर तथा अतिशय दुःख है वह इन्द्रियजनित सुखके लिए कौनसे पंडित ज्ञानी पुरुष सेवन करेंगे। कभी भी नहीं करेंगे। यह जो मनुष्यका शरीर है वह तो रोगोंका स्थान है क्योंकि इस शरीरको चाहे जितना धो लो यह पवित्र नहीं होता। सुगंधित करने पर भी सौरभित नहीं होता। परंतु शरीरके संसर्गसे उत्तमसे उत्तम सुगंधित पदार्थ भी दुर्गंधमय हो जाता है।

यह क्षणभंगुर शरीरको चाहे जितना पुष्ट करो तो भी यह बलवान नहीं रहता। प्रसन्न करने पर भी अपना नहीं होता। दीक्षित करने पर भी क्षुधाके लिए अनेक प्रयत्न करने पड़ते

हैं। अनेक प्रकारकी उत्तम शिक्षा देने पर भी अवगुणोंमें रमणता करने लग जाता है। शांत करने पर भी दुःखी रहता है। धर्मकी शिक्षा देने पर भी धर्मसे विमुख रहता है।

इस नाशवान शरीरको तेलादिकसे मर्दन करने पर भी रुक्ष रहता है। दवाके सेवनके बावजूद प्रचूर रोगोंसे घिरा हुआ रहता है। अल्प आहार करने पर भी अजीर्णसे व्याप्त हो जाता है। ठंडे पदार्थोंके सेवन करने पर भी पित्तादिसे व्याकुल हो जाता है। वातनाशक तेलादिकका मर्दन करने पर भी वातव्याधिसे पीड़ित रहता है। अनेक प्रकारसे प्रक्षालन करने पर भी गलित कुष्ट रोगसे गलता ही रहता है।

ज्यादा क्या कहें ? यह शरीर अनेक प्रकारसे रक्षित करने पर भी यमराजाके मुखका ग्रास बन जाता है। जब कि वह शरीर उपरोक्त विधिसे विपरीत प्रवर्तमान होता है फिर भी रागी पुरुष इस शरीरके लिए अनेक प्रकारके पाप कर्मोंमें तत्पर रहता है।

इस प्रकार मेरे जैसा मूर्ख प्राणी अपनी स्त्रीके वश होकर पापकर्म करता हुआ व्यापार आदिमें प्रवृत्त होकर मरकर नरकमें जाता है। इस शरीरकी ऐसी अवस्था है और जिसके लिए मैं अनेक पापकर्म करता हूँ उस प्रेयसीकी यही दशा है। तो मुझे समस्त कार्योंको छोड़ देना चाहिए। इसलिए अब प्रातःकाल होते ही नगर, परिवार और राज्यलक्ष्मीका त्याग करके गहन वनमें और सघन पर्वतोंकी गुफामें आश्रय करूँगा तथा देवेन्द्र, धरणेन्द्र, नागेन्द्र द्वारा पूज्य मुनिपद धारण करके महातप आचरण करूँगा।

हे पृथ्वीपति ! इस प्रकार चिंतवन करते हुए प्रातःकाल हुआ तो प्रभाती बाजिंत्रो और गीतोंकी ध्वनि सुनकर बिस्तर छोड़ खड़ा हुआ। पश्चात् स्नानादि नित्यक्रिया करके मैंने विचार किया कि जब मुझे इस शरीरसे ही ममत्व नहीं रहा तो फिर इन रत्नजड़ित आभूषण और बहुमूल्य वस्त्रोंसे मुझे क्या प्रयोजन ?

इस शरीरसंस्कारसे कामकी वृद्धि होती है कि जिस कामदेवका फल मुझे प्रत्यक्ष मिल ही गया है। इसलिए अब उन्हें धारण करना सर्वथा अनुचित है। उसी समय दूसरा विचार आया कि यदि मैं अभी ही सर्व आभूषण त्याग दूँगा तो समस्त अंतःपुरमें यह बात फैल जायगी कि महाराजने अवश्य कुछ अमनोज्ञ देखा है। इसलिए उदासचित्त होकर आभूषणोंका त्याग किया है। तथा मेरी राज्यसभाके पंडित लोग समस्त अभिप्रायोंके जाननेवाले हैं। उनसे यह बात किसी भी तरह गुप्त नहीं रह सकेगी।

इसके अलावा यह बात अनेक प्रकारसे समस्त नगरमें फैल जायगी तो प्रजाजनोंके चित्तमें अनेक प्रकारके विकल्प उत्पन्न होंगे। यदि अमृतादेवीको पता चलेगा तो स्वयं तो

(शेष देखे पृष्ठ १९ पर)

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी साधनाभूमि सुवर्णपुरी मध्ये

घाटकोपरनिवासी श्रीमती अरूणाबेन सुरेशभाई तुरखीया परिवारके सौजन्यसे

सुवर्णपुरी तीर्थधामके प्रथम आयतन

श्री जैन स्वाध्यायमंदिरका हीरक जयंती महोत्सव

भव्यातीभव्य प्रकारसे संपन्न

त्रिदिवसीय आयोजन तथा अभूतपूर्व उत्साह

तीर्थंकर भगवान महावीरके स्वानुभूतिमार्ग प्रकाशक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा प्रशमूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी साधनाभूमि अध्यात्म अतिशय क्षेत्र सुवर्णपुरी तीर्थधामके प्रथम आयतन ''श्री जैन स्वाध्यायमंदिर''का भक्तजन आनंदकारी हीरकजयंती महोत्सव सुवर्णपुरी सोनगढमें ता. १५-११-२०१२ से ता. १७-११-२०१२ त्रिदिवसीय महोत्सवके रूपमें, गुरु–महिमाद्योतक विशेष रोचक कार्यक्रम सह प्रचुर आनंदोल्लासपूर्वक भव्यातिभव्य प्रकारसे मनाया गया।

गुरुभक्तिकी प्रेरणादात्री

स्वानुभूतिविभूषित वी०तरागमार्गके दाता, परमोपकारमूर्ति पूज्य गुरुदेव प्रति उपकृतभावभीगे भक्तिउल्लासके यह मंगल अव०सर पर कहानगुरु-उपकार महिमाको दिखानेवाली प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी उपकृत भावभीगी पवित्र स्मृति सभी मुमुक्षुओंको अपने स्मृतिपट पर बराबर अंकित रहती थी। जैसे सुवर्णपुरीके अंतरीक्षमें उनकी मंगल उपस्थिति ही मुमुक्षु भक्तोंको गुरुभक्तिकी सातिशय उल्लास सभर प्रेरणा देती थी। स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट द्वारा आयोजित यह हीरक जयंती महोत्सव सर्व मुमुक्षुसमाजने वह कल्याणीमूर्तिकी भक्ति प्रेरणा पाकर अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया।

धर्मप्रभावनापूर्ण आयोजन

हीरकजयंती महोत्सवके धर्ममय आयोजनकी पवित्र बेला पर विविध प्रांतोंमेंसे करीबन ३००० से भी अधिक गुरुभक्त आये थे, जो कि उत्सवके आत्महितपोषक कार्यक्रमोंसे अतीव प्रसन्न दिखाई पडते थे।

उत्सवका दैनिक कार्यक्रम

भव्य बेनर्स एवं विविध सजावटसे विभूषित मनोहर मंडपमें, सुबह पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभवरसभीगी विडियो तत्त्वचर्चा, स्वाध्यायमंदिर संकुलमें भक्तिसह प्रभातफेरी, परमागम मंदिरमें ''श्री सुवर्णपुरी तीर्थ पूजन विधान'', पूज्य गुरुदेवश्रीके अध्यात्मरसपूर्ण 'समयसार' पर प्रवचन, प्रासंगिक गुरुभक्ति तथा धार्मिक शिक्षणवर्गका आयोजन रहता था। अपराह्नको गुरुभक्त विद्वानों द्वारा शास्त्रस्वाध्याय, जिनन्द्र भक्ति, सायं परमागममंदिरमें सांजी भक्ति, रात्रीको पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन तथा श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट द्वारा तैयार कराई गई नाटिका ''श्री जैन स्वाध्यायमंदिर''का कार्यक्रम सुचारुरूपसे चलता था। सभी कार्यक्रमोंके दौरान मंदिर एवं मंडप पूरे भर जाते थे।

उत्सवके मुख्य दिनका कार्यक्रम

उत्सवके मुख्य दिन ता. १७-११-१२ शनिवारको परमागममंदिरमें श्री सुवर्णपुरी तीर्थ पूजन विधानके समापन बाद, भक्तजन बड़ी तादातमें पूज्य गुरुदेवश्रीको (प्रतिकृति) लेने स्टार ऑफ इन्डिया पहुँचे। वहाँसे भक्तिके साथ पूज्य गुरुदेवश्रीको स्टार ऑफ इन्डियासे स्वाध्यायमंदिर ले जानेके लिए भव्य प्रस्थान किया गया। रास्तेमें लाठीके पड़ावसे पूज्य बहिनश्री(प्रतिकृति) चांदिकी थालीमें समयसार लेकर हजारों बहिनोंके साथ शोभायात्रामें मिल गए ।

भक्तजनोंने शोभायात्रामें ७५ वर्ष पहेलेकी वेषभूषा पहनी थी। जिससे ७५ वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेवश्रीको स्वाध्यायमंदिरमें पधारनेके लिए लेने गये थे वह मंगल प्रसंगकी यादें ताजा हुई थी। पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्री स्वयं पधार रहे हों ऐसे भावोंका अनुभव होता था। समग्र रास्तेको बहिनोंके द्वारा रंगोलीसे सजाया गया था तथा स्वाध्यायमंदिर परिसरमें सुंदर कमानें बनाई गई थी। जिसमें गमन करके पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीने स्वाध्यायमंदिरमें पदार्पण किया। स्वाध्यायमंदिरमें समयसार परमागमकी पुनः स्थापना की गई, उसके बाद पेंडालमें पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन रखा गया।

प्रवचनके बाद स्वाध्यायमंदिरकी उत्तर तथा दक्षिणदिशाओंमें सुवर्णमयी ध्वजाओंका ध्वजारोहण किया गया। दक्षिणदिशाकी ध्वजाका लाभ श्री शारदाबेन शांतिलाल शाह परिवार ह. नेमिषभाई, केतनभाईको प्राप्त हुआ तथा उत्तर तरफकी ध्वजाका लाभ श्री कांतिलाल अमीचंद कामदार परिवार, चेन्नाई ह. भरतभाईको प्राप्त हुआ।

उसके बाद स्वाध्यायमंदिरमें ॐकार शिलापट एवं स्वस्तिक शिलापटका अनावरण किया गया। ॐकार शिलापटके अनावरणका लाभ श्री कांतिलाल अमीचंद कामदार परिवार ह. भरतभाईको प्राप्त हुआ तथा स्वस्तिक शिलापटके अनावरणका लाभ श्री धीरजबेन बाबुलाल शाह परिवार, घाटकोपर ह. अनिलभाई एवं जिनेन्द्रभाईको प्राप्त हुआ था। स्वाध्यायमंदिरमें अंकित सात चित्रपट तथा शास्त्रोक्त बेनर्सके अनावरणका लाभ भी विविध मुमुक्षुओंको प्राप्त हुआ। उसके बाद स्वाध्यायमंदिरमें प्रतिष्ठित समयसारकी मंगल बधाईका कार्यक्रम रखा गया था, जिसका सभी मुमुक्षु भाई-बहिनोंने उत्साहसे लाभ लिया।

इस मंगल अवसर पर सर्वश्री ब्र. व्रजलालभाई (वढवाण) उपस्थित रहे। दोपहरका शास्त्रवांचन श्री राजुभाई कामदार, डॉ. प्रवीणभाई दोशी, निरंजनभाई–सुरतने बड़े भक्तिपूर्ण ढंगसे किया, एवं धार्मिक शिक्षणवर्गोंमें श्री सुभाषभाई शेठ (वांकानेर) श्री रमेशभाई महेता (सोनगढ), श्री अतुलभाई कामदार(हैद्राबाद) द्वारा गुरुमहिमापूर्ण अध्यापन किया गया था। तथा बहिनोंमें ब्र. आशाबहिनने अध्यापन किया था।

समग्रतया यह कार्यक्रम ममुक्षुओंको आत्मार्थप्रेरक, मधुर संस्मरणोंको जागृत करनेवाला, आत्मोत्साहवर्धक एवं यादगार प्रतीत हुआ।

शास्त्र प्रकाशन :

श्री प्रवचनसार (हिन्दी) तथा श्री मोक्षशास्त्र अर्थात् तत्त्वार्थसूत्र (गुजराती) पुस्तक उपलब्ध हैं।

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं.रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-१० से ६-३०	:	पूज्य बहिनश्रीके निवासस्थान पर उनकी धर्मचर्चाकी ऑडियो टेप
प्रातः : ८-०० से -	:	श्री जिनेन्द्र-पूजन
सुबह ८-४५ से ९-४५	:	परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन
सुबह १०-०० से १०-४५	:	धार्मिक शिक्षणवर्ग (श्री समयसार)
दोपहर प्रवचनके पहले	:	पूज्य गुरुदेवश्रीके स्टेच्यु समक्ष स्तुति
दोपहर ३-०० से ४-००	:	पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन
दोपहर प्रवचनके बाद	:	पूज्य बहिनश्रीके चित्रपट समक्ष स्तुति
दोपहर ४-०० से ४-३०	:	श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि ७-४५ से ८-४५	:	श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

बारहवीं बाल संस्कार अध्यात्मज्ञान शिविर

अनंत उपकारी परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके धर्मप्रभावनायोगसे श्री कहान पुष्प परिवार द्वारा सुवर्णपुरी सोनगढमें श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट अंतर्गत एवं श्रीमती वर्षाबेन निरंजनभाई डेलीवाला परिवार, सुरेन्द्रनगरके सौजन्यसे बारहवीं बालसंस्कार अध्यात्मज्ञान शिविर दि. २५-१२-२०१२ मंगलवार से दि. ३०-१२-२०१२ रविवार तक आयोजित हो रही है। अतः मुमुक्षुओंको निवेदन है कि वे अपने बालकोंको लेकर शिविरका लाभ प्राप्त करने हेतु अवश्य सोनगढ पधारें।

बालसंस्कार शिविरके शिविरार्थी बालकों एवं युवकोंको अवगत कराया जाता है कि हर साल की तरह इस साल भी शिविरमें रात्रिके समय धार्मिक सांस्कृतिक कार्यक्रमका आयोजन किया गया है, तो उसमें हिस्सा लेनेके इच्छुक शिविरार्थी यथायोग्य तैयारीके साथ शिविरमें आये।

भगवान श्री कुंदकुंदाचार्य 'आचार्यपदवी दिन' समारोह

पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीकी साधनाभूमि सुवर्णपुरीमें भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवके 'आचार्यपदवी दिन'का दो दिनका उत्सव मार्गशीर्ष कृष्णा-७, ता. ४-१-२०१३, शुक्रवार से मार्गशीर्ष कृष्णा-८ ता. ५-१-२०१३, शनिवार तक भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके विशेष पूजन-भक्तिके कार्यक्रम सह मनाया जाएगा तो सभी मुमुक्षुओंको सुवर्णपुरी सोनगढ पधारनेका हार्दिक निमंत्रण है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

✻ वास्तवमें तो रागसे विरक्ति (भिन्नता)को शील कहा जाता है। ऐसा शील नरकमें भी वेदनाको नहीं गिनता। यह तो अत्यन्त धैर्यपूर्वक समझने जैसा है। जैसे समुद्रका पानी सींक द्वारा उलेचना हो तो कितना धैर्य होना चाहिये! ६३०.

✻ देव–शास्त्र–गुरु भी तेरे लिये पर हैं; उनके आश्रयसे–लक्षसे भी आत्मा प्राप्त नहीं होता; इसलिये उनका लक्ष छोड़ दे। अंतरमें ज्ञानानन्दका पिण्ड प्रभु आत्मा विराजमान है उसका लक्ष कर, उस एकको ही ग्रहण कर। अपने परिणामको वहाँ भीतर ले जा, उसीसे तुझे ज्ञानानन्दकी प्राप्ति होगी। ६३१.

✻ शुभाशुभभाव तथा अन्य पर्यायसे परिणामोंको हटाकर उन्हें भीतर स्वभावके महलमें जहाँ भगवान आत्मा विराजमान है वहाँ ले जा। राग तो अंधा है, उसमें भगवान नहीं है, परन्तु पर्याय जो निज वस्तुका ही अंश है उसमें भी पूर्ण भगवान नहीं है। त्रैकालिक ज्ञायकमें–जागृत स्वभावमें–भगवान आत्मा है, उसमें निवास कर; वहाँ जा। ६३२.

✻ कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवानके पास गये थे, परन्तु उनके टीकाकार घोषणा करते हैं। कहते हैं कि–अरे! हमने जिनसे कहा वे श्रोता यह कहते हैं कि हमने मोहको मूलसे उखाड़ दिया है इसलिये मोहका अंकुर भी अब फिरसे उगनेवाला नहीं है। अहाहा! श्रोता : कहाँ भगवानके पास गया है?–तो कहते हैं कि यह निज-भगवानके पास गया है न! इसलिये गिरनेकी बात मेरे लिये नहीं है। शास्त्रमें गिरनेकी बात आती है परन्तु वह तो जाननेके लिये है, मेरे लिये यह बात नहीं है। अहाहा! जिसने शुद्ध द्रव्यका आश्रय लिया और सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए उसके गिरनेकी अब बात नहीं है! ६३३.

✻ ज्ञानीको जो राग-द्वेष होते दिखायी देते हैं उन्हें ज्ञानी नहीं करता, परन्तु पुद्‌गलद्रव्य स्वतंत्ररूपसे व्यापक होकर पुण्य–पापके परिणामोंको करता है। जिस प्रकार मिट्टी घड़ेमें अन्तर्व्यापक होकर घड़ेको करती है, उसी प्रकार ज्ञानी–धर्मात्माको दिखनेवाले—होनेवाले भक्ति, पूजा, व्रत, तपादि रागके परिणामोंमें पुद्‌गलद्रव्य अन्तर्व्यापक होकर रागादि परिणामोंको करता है। रागादि परिणामोंमें और आत्मामें–घड़ा और कुम्हारकी भाँति–व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे धर्मी जीव रागादिमें व्यापक होकर कर्ता नहीं होता। अहाहा! ज्ञानीकी अंतर्दशा अद्भुत है! ६३४.

आत्मधर्म
दिसम्बर-२०१२
अंक-४ ❀ वर्ष-७

Registered Regn. No. BVR-368/2012-2014
Renewed upto 31-12-2014
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क ९=०० आजीवन शुल्क १०१=००

Printed & published by Jitendra Vrajlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Kahan Mudranalay, Jain Vidhyarthi Gruh, At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Kantilal Maheta.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org